

वर्तमान दौर में कबीर वाणी की महत्ता

डॉ. सुषमा सहरावत,

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
कमला नेहरू कॉलेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय

शोध सारांश

कबीर का काव्य व्यष्टि का नहीं समष्टि का काव्य है। वहां व्यक्तिगत इर्ष्या-द्वेष जन्य विरोध और आक्रोश का भाव ना होकर सामाजिक उत्थान के निमित्त किया जाने वाला व्यापक विद्रोह और क्रांति भाव मिलता है। उनकी वाणी से समाज के सन्दर्भ में जो उद्गार निकले थे वे साहसपूर्ण होने के साथ-साथ मानव समाज के हितों की रक्षार्थ भी थे। कबीर द्वारा उच्चरित उद्गार आज भी उतना ही महत्व रखते हैं क्योंकि आज भी समाज में मध्ययुगीन समस्याएं, धार्मिक और आचरणगत आडम्बर विद्यमान हैं।

संतकवि कबीर की वाणी में बोधगम्यता, निर्भीकता और सटीकता की एक ऐसी चुम्बकीय शक्ति विद्यमान थी जिसने न केवल तत्कालीन जन-मानस को अपनी ओर आकर्षित कर जोड़ा अपितु आज लगभग छः शताब्दी पश्चात भी, वर्तमान समय में भी उनकी वाणी उतनी ही प्रभावशाली व महत्वपूर्ण बनी हुई है। उनके काव्य में अभिव्यक्त मानवीय करुणा आधुनिक भाव बोध की समीपता के कारण आज भी प्रासंगिक है। उनकी वाणी से समाज के सन्दर्भ में जो उद्गार निकले थे वे साहसपूर्ण होने के साथ-साथ मानव समाज के हितों की रक्षार्थ भी थे। मध्यकालीन भारतीय समाज जो कि तमाम तरह की जड़ताओं, अंधविश्वासों और संकीर्णताओं में बंधा हुआ था, उस समय जिस तरह की आधुनिक, प्रगतिशील सोच की लौ लेकर कबीर ने जन-मानस को आलोकित किया वह एक मिसाल ही थी। कबीर द्वारा उच्चरित उद्गार आज भी उतना ही महत्व रखते हैं क्योंकि आज भी समाज में मध्ययुगीन

समस्याएं, धार्मिक और आचरणगत आडम्बर विद्यमान हैं। आज भी कट्टरपंथी धर्मावलम्बियों के कारण हिन्दू-मुस्लिम एकता की दिशा में प्रयासों की आवश्यकता है। धर्मांध लोगों की कट्टरपंथी सोच के चलते ही आज इक्कीसवीं सदी में भी कभी गोधरा काण्ड होता है, कभी गुजरात दंगों तो कभी कहीं मुज्जफरनगर की घटना होती है। इसी तरह राम जन्म-भूमि विवाद का हल आज तक नहीं हो पाया है। आज यदि कबीर होते तो विश्व के सबसे बड़े लोकतान्त्रिक देश में, जहाँ सर्वोच्च न्यायालय तक की स्वतंत्रता खतरे की संभावनाओं के घेरे में आने लगे, इस तरह की घटनाएँ देखकर जरूर उनकी आत्मा त्राहिमान कर रही होती। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपनी पुस्तक कबीर में लिखा है कि "कबीर अपने समय में अस्वीकार का बहुत बड़ा साहस लेकर सामने आये थे।" असल में, यह अस्वीकार का भाव ही कबीर को कालजयी बनाता है। अमानवीयता, धर्माडंबर, असहिष्णुता, वर्ण-व्यवस्था, पाखंड,

कर्मकांड आदि को कबीर ने निडरतापूर्वक सिर से नकार कर तीक्ष्ण प्रहार किए हैं। वे किसी से डरते नहीं हैं। साफ़ कहते हैं—“पांडे कौन कुमति तोहिं लागी, कसरे मुल्ला बांग नेवाजा।” सच्चाई तो यह है कि आज, इक्कीसवीं सदी में भी, यदि हम नज़रें घुमाकर देखेंगे तो पाएंगे कि समाज में ऐसे लोग हैं ही कितने जो बेखौफ़ होकर एक तरफ़ हिन्दुओं को उनके धार्मिक पाखंडों के लिए लताड़ने की क्षमता रखते हों तो दूसरी ओर मुसलमानों को उनके बाह्याडम्बर पर फटकार लगाने का साहस भी उनमें हो। यद्यपि कबीर ने अपने निर्गुण ब्रह्म को ‘राम’ कहकर ही संबोधित किया है पर वह स्पष्ट कर देते हैं कि “सर्व भूत एकै कर जान्या चूके वाद-विवादा।” आमतौर पर होता यह है कि किसी एक धर्म के प्रति लगाव के चलते व्यक्ति दूसरे धर्मों के प्रति उतना उदार न रह उनके नियम-कायदों में बुराईयाँ खोजकर उनका विरोध करता रहता है किन्तु अपने धर्म के सब कायदे-कानून, नियम-बंधन उसे सर्वश्रेष्ठ और उचित प्रतीत होते हैं। कबीर जैसे निष्पक्ष संत तो विरले ही पैदा होते हैं जिनके लिए मानवता ही सर्वोपरि धर्म होता है और वह किसी एक धर्म के रूढ़िबद्ध ढांचे में कैद न होकर मुक्त जीवन जीते हैं। ऐसा जीवन जो मानव कल्याण को समर्पित हो तथा जिसमें प्राणी मात्र को हेयता की दृष्टि से न देखकर समान भाव का अधिकारी समझा जाये। किसी भी तरह की सामाजिक विषमता कबीर को अस्वीकार्य है। मानवीय करुणा का भाव उनके समस्त काव्य का बीज तत्व है। कबीर सौमनस्यता की भावना और जातीय एकता की ज्योति लेकर आये थे। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में “उनमें युगप्रवर्तक का विश्वास था और लोकनायक की हमदर्दी। इसीलिए वे एक नया युग उत्पन्न कर सके।” सच तो यही है कि मध्यकालीन समाज में आधुनिक विचार दृष्टि से संपन्न कबीर जैसी निष्पक्ष शक्तियत वाकई बेमिसाल है।

समतामूलक समाज उस समय भी काम्य था और आज भी है ऐसा तभी संभव हो सकेगा जब सभी के पास समान संसाधन उपलब्ध होंगे। इसके लिए जरूरी है कि उपलब्ध संसाधनों को सोच-समझकर व्यय किया जाये। अब देखिये कि कबीर कितने दूर-दृष्टा रहे होंगे कि उन्होंने आज से छः सौ साल पहले उन बातों पर ध्यान दिलाना आरम्भ कर दिया था जो बातें आज भी मानव जीवन के लिए न केवल आवश्यक हैं बल्कि निरंतर घटते संसाधनों के कारण आज भी चिंता का विषय बनी हुई हैं। अनाज का संरक्षण भी इन्हीं में से एक चिंता है वर्तमान में जहाँ लोगों को भोजन व्यर्थ न करने के लिए भिन्न-भिन्न माध्यमों और उपायों द्वारा जागरूक किया जा रहा है वहाँ कबीर ने इसे पहले ही भांप लिया था। भोजन की महत्ता को वे जानते थे। उन्हें ज्ञात था कि भोजन को व्यर्थ करने का अर्थ किसी भूखे के मुंह से अन्न का निवाला छीन लेना है। अल्पाहार की अनिवार्यता पर बल देते हुए उन्होंने सादे भोजन से विरक्त व्यक्ति की तुलना गुड़ में चिपककर छटपटाती हुई मक्खी से की है और कहा है कि हमें भोजन जिद्धा के लालच के वश में होकर नहीं अपितु अपनी आवश्यकता के अनुसार ही करना चाहिये—“माखी गुड़ में गड़ी रही, पंख रह्यो लिपटाय। हाथ मलै और सिर धुनै, लालच बुरी बलाय”। अत्यधिक धन-संचय को वे अनुचित मानते हैं और ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि—“साई इतना दीजिये, जामे कुटुम समाय। मैं भी भूखा न रहूँ, साधु न भूखा जाय।” तात्पर्य यह कि संसार में प्रत्येक प्राणी को इतना धन मय्यसर हो कि वह अपना और अपने परिवार का भली-भांति भरण-पोषण कर पाये, साथ ही घर आये अन्य प्राणियों की सेवा-सुश्रुषा करने का सामर्थ्य भी उसमें हो।

अज्ञानता के कारण मनुष्य दिग्भ्रमित होकर कुमार्ग अपनाता है। आज भी समाज में निरंतर बढ़ती कुत्सित सोच और बढ़ते अनाचारों का एक मुख्य कारण अज्ञानता है जिसके चलते

सही—गलत का भेद मनुष्य नहीं कर पाता। कबीर ने यह अनुभव किया था कि ज्ञान के अभाव में मनुष्य अपनी कमजोरियों पर विजय प्राप्त नहीं कर सकता और इसीलिए उन्होंने ज्ञान की महत्ता प्रतिपादित की है। वे कहते हैं कि ज्ञान कहीं से भी मिले तो प्राप्त करने का मौका गंवाना नहीं चाहिए। हमें यह नहीं सोचना चाहिए कि ज्ञान देने वाला व्यक्ति उच्च जाति का है या निम्न जाति का—“जाति न पूछो साध की, पूछ लीजिये ज्ञान। मोल करो तलवार का, पड़ा रहन दो म्यान।”

आज समाज में हर तरफ हिंसा और असहिष्णुता का माहौल होता जा रहा है। लोगों में धैर्य की क्षमता घट रही है। रोडरेज़ की घटनाओं के बढ़ते आंकड़े इसी का परिणाम हैं। हिंसात्मक माहौल के चलते जन-मानस स्वयं को आज सर्वाधिक असुरक्षित महसूस कर रहा है। कबीर अहिंसावादी रहे हैं। अहिंसा वास्तव में मन, वचन और कर्म से किसी को भी दुःख न पहुँचाना है और कबीर के काव्य में अहिंसा के इन सभी रूपों के दर्शन होते हैं। जीव-हिंसा की कबीर निंदा करते हैं। अपने स्वार्थ और जिह्वा-स्वाद के लिये की गयी जीव-हिंसा को उन्होंने निंदनीय माना है। मांसाहारी से दूर रहने की बात वे करते हैं—“मांस अहारी मानवा, परतछ राछस अंग। ता की संगति मत करौ, परत भजन में भंग।” प्रत्येक प्राणी के जीवन की महत्ता हमें स्वीकारनी चाहिये। निरीह प्राणियों पर की जाने वाली हिंसा की कबीर भर्त्सना करते हैं। कितना व्याहवारिक व सहज तर्क देते हुए उन्होंने कहा कि “बकरी पाती खात है, ताकि काढी खाल। जो नर बकरी खात है, ताकौ कौन हवाल।”

कबीर ने कटु-वचनों द्वारा किसी का भी दिल न दुखाने की बात कही है। इस सन्दर्भ में एक पुरानी कहावत याद आ रही है कि “लातों के घाव भर जाते हैं, बातों के नहीं।” आज भी वाणी एक ऐसा हथियार है जिसकी धार तलवार से भी तेज होती है। इसीलिए कबीर कहते हैं—“ऐसी

वाणी बोलिए, मन का आपा खोये। औरन को सीतल करै, आपहुं सीतल होये।” वाणी द्वारा जो घाव दिया जाता है वह इतना गहरा होता है कि उसकी टीस उग्रभर नहीं जाती।

वर्तमान शब्दावली में आज जिस मेडिटेशन की बात हम करते हैं उसका महत्त्व प्रतिपादन कबीर के यहाँ मिलता है। इन्द्रियों को अपने वश में रखकर सांसारिक माया-मोह के मायाजाल में अनुरक्त न होकर चित्त को काबू में रखने की कला सहज साधना है। विषयानुरक्त व्यक्ति चाहे जितना किताबी ज्ञान अर्जित कर ले पर तन-मन के संयम के बिना वास्तव में वह मूर्ख ही रहता है—“काम, क्रोध, मद, लोभ की जब लागि घट में खान। कहा मूरख, कहा पंडिता, दोनों एक समान।” असल में, उनका समस्त काव्य समाज-सुधार को समर्पित है। समाज में जहाँ कहीं भी उन्होंने अज्ञान और आडम्बर का अँधेरा छाया हुआ देखा, वहाँ उसे अनावृत करने में वे झिझके नहीं।

कबीर ने हर तरह के सामाजिक अन्याय का विरोध किया है और इस विरोध व खंडन-मंडन की प्रवृत्ति के पीछे मूल उद्देश्य मानव मात्र के प्रति प्रेम की भावना है। “ढाई आखर प्रेम के, पढ़े सो पंडित होय” का उद्घोष करने वाले कबीर वास्तव में एक समाज सुधारक के रूप में सामने आते हैं। वे मानव मात्र की पीड़ा से संतप्त और आक्रांत रहते हैं—“सुखिया सब संसार है, खावे अरु सोवे। दुखिया दास कबीर है, जागे अरु रोवे।” कबीर का यह जागना और रोना साधारण नहीं है। समाज में विद्यमान अज्ञानता, अविश्वास, भेदभाव, अंधश्रद्धा, वैर-विद्वेष, अहंकार, शोषण आदि हैं जिन्हें देखकर संत कबीर का अंतर्मन दुखी और बेचैन हो उठता है। न्यायसंगत और समतापूर्ण समाज की कामना कबीर रखते हैं और इसीलिए न मुस्लिम धर्म के प्रति उनका लगाव रहा और न ही हिन्दू धर्म के प्रति क्योंकि वे जान गए थे कि दोनों ही धर्मों के अनुयायियों की

आँखों पर अंधश्रद्धा की पट्टी बंधी हुई है और जो खुद ही देख पाने में असमर्थ हों वे दूसरों का क्या मार्गदर्शन करेंगे—“अरे इन दोउन राह न पाई। हिन्दुवन की हिन्दुवाई देखि, तुरकन की तुरकाई।” हिन्दुओं और मुसलमानों द्वारा अपनाये जाने वाले बाह्याचारों तथा कर्मकांडों पर उन्होंने दोनों को आड़े हाथों लिया है। इनसे सम्बंधित कुछ प्रसिद्ध दोहे देखिये— “पाथर पूजै हरि मिलें, तो मैं पूजूं पहार। तातैं यह चाकी भली, पिसि खाय संसार।” (मूर्ति-पूजा का विरोध) “कांकर-पाथर जोरि कै, मस्जिद लिया चिनाय। ता चढी मुल्ला बांग दे, क्या बहरा हुआ खुदाय।” (नमाज़ का खंडन) “माला फेरत दिन गया, गया न मन का फेर। कर का मनका छाड़ी दे, मन का मनका फेर।” (माला फेरने की निस्सारता) “दिन को रोजा रखत हैं, रात हनत हैं गाय। यह तो चरन, वह बंदगी, कैसे मिले खुदाय।” (जीव-हिंसा का विरोध) “जो तू बामन बामनी जाया, आन बाट तै क्यों नहीं आया। जो तू तुरक तुरकनी जाया, भीतर खतना काहे न कराया।” (भेद-भाव का विरोध) “हिन्दू कहै मोहि राम पियारा, तुरक कहै रहिमाना। आपस में दोउ लरि-लरि मुए, मरम न काहू जाना।” (धर्मान्धता का विरोध) इसी तरह के अनेकों अन्य दोहे और भी हैं जिनमें कबीर की समाज को जागरूक करने की भावना लक्षित होती है।

धर्मान्धता मानवता की राह में पहले भी बाधक थी और आज भी बनी हुई है। यही कारण है कि “पूजा करूं न नमाज़ गुजारूं। एक निराकार हृदय नमस्कारूं।” कहकर कबीर ने एक ही परम तत्व की आराधना पर बल दिया है। मनुष्य को मनुष्य से अलगाने वाली वर्ण-व्यवस्था कबीर को अस्वीकार्य है। ईश्वर ने तो सभी को समान बनाया है। वर्ण विभाजन जैसी भेदभाव पूर्ण व्यवस्था का निर्माण तो मानव जाति ने स्वयं किया है। चतुर्वर्ण यदि ईश्वर को मान्य होता तो सवर्ण या असवर्ण का ठप्पा लेकर ही मनुष्य जन्मता किन्तु ऐसा नहीं है क्योंकि तत्त्वतः मानव

जाति एक समान है। जाति-भेद का खंडन करते हुए कबीर बेझिझक कहते हैं—“एक बूँद एकै मल मूतर, एक चाम एक गूदा। एक जोति से सब उतपना, कौन बाह्यन को सूदा।” पर-पीड़ा की तीव्र अनुभूति उनके यहाँ है। जहाँ गरीबी का दुःख वे समझते हैं वहीं “मैं गुलाम मोहिं बेची गुसाई” के माध्यम से दास-प्रथा की पीड़ा को भी अभिव्यक्ति देते हैं। सामाजिक-धार्मिक स्तर पर व्याप्त विषमताओं, राजनैतिक अव्यवस्था, भेदभाव, कर्मकांडों की चक्की में जिस तरह तात्कालीन जनता का जीवन पिसकर अपना वजूद खो रहा था उसी तरह की स्थिति वर्तमान समय के समाज में भी देखी जा सकती है। वस्तुतः युगीन यथार्थ की विषमताओं के प्रति उपजे आक्रोश ने ही कबीर काव्य में वाणी पायी है। उन्होंने कोई पोथी-ग्रंथों का अध्ययन नहीं किया था। उनका काव्य तो उनके अनुभव का निचोड़ है जिसे वे “अनभै सांचा” कहते हैं और इसका अर्थ आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में अनुभव का सत्य भी है और अनभय सत्य भी है फकीर ने जो कुछ कहा अपने जीवनानुभवों के आधार पर बिना किसी भय के कहा। वे स्पष्ट कहते हैं—“मैं कहता हूँ आँखिन देखि, तू कहता कागद की लेखी।” ये आँखिन देखि बात कहना कोई साधारण बात नहीं है। विश्वसनीयता का सूत्र यहीं से जन-मानस को अपने से जोड़ लेता है।

कबीर धर्म और जाति की संकीर्णताओं में बंधने वाले साधारण संत नहीं थे। वे ना ही हिन्दुओं के पक्षधर हैं और ना ही मुसलमानों के, ना वे सवर्णों की पैरवी करते हैं और ना ही अवर्णों की। वे कहते हैं—“हिन्दू कहो तो मैं नहीं, मुसलमान भी नाहिं। पांच तत्व का पूतला, गैबी खेले माहिं।” तथा “हम बासी उस देस के जहाँ जाति बरन कुल नाहिं।” सच तो यह है कि धर्म और जाति की क्षुद्र मानसिकता कबीर जैसे उदारमना व संवेदनशील संत में है ही नहीं। मानवता ही उनका धर्म है और मनुष्यता ही उनकी जाति। इसीलिए उन्हें किसी भी एक

निश्चित खेमे में खींचने का प्रयास सर्वथा बेमानी है। डॉ. धर्मवीर ने अपने लेख "सूर्य पर पूरा ग्रहण" में आचार्य ह०प्र० द्विवेदी पर उनकी पुस्तक "कबीर" के सन्दर्भ में जो आरोप-प्रत्यारोप लगाए, उनका निष्पक्ष समाधान वीर भारत तलवार के "दलित आलोचना की कसौटी" शीर्षक लेख में काफी हद तक हमें मिल जाता है। यह लेख बिना किसी की पक्षधरता के कबीर काव्य का अनुशीलन करता है। डॉ. धर्मवीर को तो आचार्य ह०प्र० द्विवेदी द्वारा कबीर के लिए प्रयुक्त किये गए "समाज सुधारक" शब्द पर भी आपत्ति है। उनके अनुसार यह एक "छोटा शब्द" है जिसे उन्होंने समाज को एक बौद्धिक झांसा देते हुए कबीर के क्रांतिकारी रूप को पूर्णतया भुला देने के लिए इस्तेमाल किया। इस बात पर मैं कहना चाहती हूँ कि समाज सुधारक शब्द कोई "छोटा" या तुच्छ शब्द नहीं है। किसी भी समाज में अपनी वाणी, विचारों या कृत्यों से सुधार ला सकने की सामर्थ्य रखने वाले व्यक्ति को सुधारक की संज्ञा से संबोधित करना उन्हें सम्मान ही प्रदान करना है। कबीर को समाज सुधारक कहना उन्हें आदर ही प्रदान करता है ना कि उन्हें सीमित दायरे में कैद करने की कोई साजिश है। "कबीर" पुस्तक को मैंने कभी भी ब्राह्मणवादी दृष्टिकोण को मद्देनजर रखते हुए नहीं पढ़ा और ना ही उनका समाज सुधारक रूप पढ़ते-पढ़ाते हुए कभी ऐसा लगा। शब्दों के मकड़जाल में फंसाकार कबीर पर एकाधिकार स्थापित करने की चेष्टा ठीक नहीं। कबीर तो फक्कड़ संत थे। किसी भी वाद के घेरे से परे थे। उन्होंने जो देखा, सो कहा, किसी को अच्छा लगे या बुरा इसकी परवाह किये बिना कहा। मूल बात तो यह है कि कबीर सबके हैं और सब कबीर के हैं। मानवता जहाँ है कबीर वहाँ हैं और अमानवीयता, दुराचार व पाखण्ड जहाँ कहीं भी है वहाँ कबीर नहीं। कबीर जब जाति-पाति के बन्धनों से कोई सरोकार ही नहीं रखते तो फिर उन्हें किसी भी जाति-धर्म में बाँधकर देखना उनके काव्य की सम्पूर्णता से

अनभिज्ञ रहना ही है। ऐसा करने वाले आलोचकों को यह समझना होगा कि कबीर के महान काव्य को किसी भी सीमित दायरे या साँचे में कैद करके नहीं रखा जा सकता और ऐसा करने वाले केवल अपनी संकुचित बुद्धि का प्रदर्शन मात्र ही करते हैं।

कबीर का काव्य व्यष्टि का नहीं समष्टि का काव्य है। वहाँ व्यक्तिगत इर्ष्या-द्वेष जन्य विरोध और आक्रोश का भाव ना होकर सामाजिक उत्थान के निमित्त किया जाने वाला व्यापक विद्रोह और क्रांति भाव मिलता है। मैनेजर पांडेय के शब्दों में, "कबीर भक्ति काल के संभवतः अकेले ऐसे संत कवि हैं जिन्हें हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई और बौद्ध सभी अपना मानते हैं। यही कारण है कि रवीन्द्रनाथ टैगोर ने कबीर को 'मुक्तिदूत' और 'भारत पथिक' कहा था और उन्हें राजा राममोहन राय का अग्र पथिक घोषित किया था। कबीर केवल अपने युग की नयी चेतना के जागरण के प्रेरणा-स्रोत ही न थे, वे आधुनिक भारतीय नवजागरण के अग्रदूत भी हैं। यह कहना गलत न होगा कि आधुनिक भारतीय नवजागरण की चिंतनधारा में जो कुछ देशज, उदार, अग्रगामी और जनोन्मुख है, उसके निर्माण में कबीर की कविता की महत्वपूर्ण भूमिका है।" (कबीर और आज का समय' लेख, कबीर की खोज, पृष्ठ 198)। धर्म, जाति, भेदभाव सरीखी संकीर्णताओं की दलदल से परे मानवीयता की ठोस ज़मीन पर कबीर का काव्य खड़ा है। इस दृष्टि से हम कह सकते हैं कि कबीर अपने समय-संदर्भों में जितने आधुनिक थे, उतने ही सेक्युलर, और आज के समय-सन्दर्भों में भी इस बिंदु पर वे आधुनिक और सेक्युलर होने की मिसाल हैं। उस युग में कबीर द्वारा कही गयी समत्व, भ्रातृत्व, बंधुत्व, अहिंसा, त्याग, करुणा, समभाव, मानवता, सहिष्णुता और लोक-कल्याण की बातें आज के दौर में भी सार्थक बनी हुई हैं व्यक्तिगत द्वेषभाव का लेशमात्र भी उनके काव्य में नहीं है। यही बात उनके काव्य को सार्वभौमिक और

सार्वकालिक बनाती है और इसी कारणवश वर्तमान समाज के जीवन-मार्ग को प्रशस्त करने की दिशा में उनके काव्य की उपादेयता आज भी बनी हुई है।

सन्दर्भ

- हिंदी साहित्य की भूमिका, हजारीप्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1997 संस्करण
- कबीर-ग्रंथावली, सं. श्यामसुंदरदास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 2016 वि. संस्करण
- कबीर, हजारीप्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1971 संस्करण
- पूरा कबीर, डॉ. बलदेव वंशी, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2008 संस्करण
- कबीर की खोज, सं. राजकिशोर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001 संस्करण